समक्ष एम.एम पूंछी, जे.

न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से- याचिकाकर्ता

बनाम

राम लुभाया एवं अन्य- उत्तरदाता

आपराधिक पुनरीक्षण याचिका 1488/1984

30 अक्टूबर 1984

भारतीय दंड संहिता (XLV ऑफ़ 1860) - धाराएं 361 और 363 - अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम (XX ऑफ़ 1958) - धारा 4 - दत्तक पिता की कानूनी हिरासत से नाबालिग बेटी का अपहरण करने का प्रयास - ऐसा प्रयास - क्या धारा 361 के तहत प्राकृतिक पिता को दोषी बनाता है - अपीलीय न्यायालय धारा 4 के तहत आरोपी को परिवीक्षा पर रिहा करता है, लेकिन जुर्माना लगाने को बरकरार रखता है - जुर्माना बनाए रखता है - क्या कानूनी– फैसले को अंतिम रूप देने और उस पर हस्ताक्षर करने के बाद उसमें यह नोट जोड़ा जाता है कि दोषसिद्धि से आरोपी की सेवा प्रभावित नहीं होगी–ऐसा निर्देश क्या स्वीकार्य है।

माना गया कि भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 361 किसी भी नाबालिग को ऐसे अभिभावक की सहमति के बिना उसके वैध अभिभावक के संरक्षण से बाहर ले जाने या फुसलाकर ले जाने की परिकल्पना करती है। इसमें जोड़ा गया स्पष्टीकरण 'वैध अभिभावक' शब्दों का विस्तार करता है। इसमें कोई भी व्यक्ति शामिल है जिसे कानूनी तौर पर ऐसे नाबालिग या अन्य व्यक्ति की देखभाल या अभिरक्षा सौंपी गई है। दंड संहिता की धारा 361 की व्याख्या में एक ही समय में एक नाबालिग के एक से अधिक वैध अभिभावकों की परिकल्पना की गई है। मामले के इस दृष्टिकोण से, नाबालिग बच्चे का प्राकृतिक पिता, दत्तक पिता के साथ-साथ कानूनी अभिभावक भी था। ऐसे में यह नहीं कहा जा सकता कि नाबालिग के प्राकृतिक पिता ने धारा 361 के तहत अपराध किया है ताकि वह संहिता की धारा 363 के तहत दंडनीय हो। (पैरा 3-4)

माना गया कि अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम 1958 की धारा 4 के तहत आरोपी को परिवीक्षा पर रिहा करते समय जुर्माना लगाने को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

(पैरा 5)

यह माना गया कि यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि न्यायाधीश निर्णय के समापन और हस्ताक्षर करने के बाद उसमें कोई नोट नहीं जोड़ सकता है। यह पाठ्यक्रम कानून के तहत स्वीकार्य नहीं होगा और ऐसा न्यायाधीश आरोपी को दोषी ठहराने का आदेश नहीं दे सकता है, जिससे उसकी सेवा प्रभावित न हो। वह आपराधिक न्यायालय के रूप में न्यायाधीश के अधिकार क्षेत्र से बाहर था। (पैरा 5)

यह पुनरीक्षण याचिका इस न्यायालय द्वारा अपने स्वयं के प्रस्ताव पर ली गई थी, - माननीय श्री न्यायमूर्ति एम.एम. पुंछी द्वारा पारित आदेश दिनांक 28 सितंबर 1984 के तहत, श्री ओ.पी. गुप्ता, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, चंडीगढ़ द्वारा पारित दिनांक 3 मई 1984 के निर्णय से। जिसके तहत उन्होंने आईपीसी की धारा 363/511 के तहत ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज राम लुभाया की सजा को बरकरार रखा, लेकिन उसे परिवीक्षा पर रिहा कर दिया।

याचिकाकर्ता के लिए निमो

एचएस बराड़, स्थायी वकील, चंडीगढ़ प्रशासन और

पी. एस तेजी, प्रतिवादी नंबर 2 के वकील

प्रतिवादी नंबर 1 के लिए वकील के एल अरोड़ा

निर्णय

एम.एम पूंछी, जे.(मौखिक):

1. प्रतिवादी राम लुभाया को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, चंडीगढ़ द्वारा धारा 363/511 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया था , और छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी और साथ ही 300 रुपये का जुर्माना भी भरना पड़ा था। श्री ओपी गुप्ता, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, चंडीगढ़ ने अपील में दोषसिद्धि की पुष्टि की, लेकिन अपने आदेश दिनांक 1958 के तहत अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के तहत प्रतिवादी को रिहा कर दिया। 3-5-1984. निर्णय पर हस्ताक्षर करने के बाद, विद्वान न्यायाधीश ने यह आदेश देकर एक नोट संलग्न किया कि दोषसिद्धि अपीलकर्ता की सेवा को प्रभावित नहीं करेगी। विद्वान न्यायाधीश के कुछ निर्णय पढ़ते समय यह निर्णय एवं आदेश मेरे संज्ञान में आया। अभिलेख मंगाए गए। पुनरीक्षण की स्वत: प्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करते हुए, प्रतिवादी और चंडीगढ़ प्रशासन को सुना गया है।

2. प्रतिवादी के खिलाफ स्थापित आरोप यह है कि उसने डॉ. मदन मोहन रतन की वैध संरक्षकता से अपनी ही 9 साल की प्राकृतिक बेटी कामिनी का अपहरण करने का प्रयास किया, जो कथित तौर पर उसके जन्म की तारीख से ही बच्चे की हिरासत में थी। यह आगे स्थापित है कि डॉ. मदन मोहन रतन कामिनी के मामा हैं। रिकॉर्ड में यह भी स्थापित है कि नाबालिग के संबंध में प्रतिवादी द्वारा डॉ. मदन मोहन रतन के पक्ष में कोई नियमित गोद लेने का दस्तावेज निष्पादित नहीं किया गया था, लेकिन सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, डॉ. मदन मोहन रतन ने उक्त नाबालिग को अपना माना था। गोद ली हुई बेटी। जैसा कि नीचे की अदालतों ने देखा है, नाबालिग की संरक्षकता को लेकर दोनों के बीच विवाद का फैसला गार्जियन कोर्ट ने निर्णय, एक्ज़िबिट पीएस, दिनांक के तहत डॉ. मदन मोहन के पक्ष में किया था। 12-11-1983. प्रयास के दो उदाहरणों में कहा गया था कि अपराध बहुत पहले 26-10-1978 को किया गया था।

3. इन स्वीकृत तथ्यों पर, नीचे की अदालतों को यह देखना होगा कि क्या प्रतिवादी का कृत्य पूरी तरह से धारा 361 ,भारतीय दंड संहिता के दायरे में आता है , ताकि धारा 363 , भारतीय

दंड संहिता के तहत दंडनीय हो । लेकिन, जैसा कि पहले कहा गया, यह उस दिशा में एक प्रयास था न कि वास्तविक आयोग। धारा 361 , भारतीय दंड संहिता , किसी भी नाबालिग को ऐसे अभिभावक की सहमति के बिना उसके वैध अभिभावक के संरक्षण से बाहर ले जाने या फुसलाकर ले जाने की परिकल्पना करती है। इसमें जोड़ा गया स्पष्टीकरण 'वैध अभिभावक' शब्दों का विस्तार करता है, जिसमें ऐसे किसी भी व्यक्ति को शामिल किया जाता है जिसे ऐसे नाबालिग या अन्य व्यक्ति की देखभाल या हिरासत के लिए कानूनी रूप से सौंपा गया है। स्थापित तथ्यों पर, डॉ. मदन मोहन रतन एक ऐसे वैध अभिभावक थे जैसा कि स्पष्टीकरण के तहत परिकल्पना की गई है। लेकिन समान रूप से प्रतिवादी, नाबालिग के प्राकृतिक पिता के रूप में उसका वैध अभिभावक भी था। सावधानी के तौर पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि इन दो वैध अभिभावकों के बीच विवाद को संरक्षक न्यायाधीश द्वारा 12-11-1983 तक सुलझा लिया गया था, लेकिन अपराध की तारीख पर, झगड़ा सामने आ गया था। अभिभावक न्यायाधीश के समक्ष सर्वोपरि विचार स्पष्ट रूप से नाबालिग का हित था। नाबालिग के प्रति डॉ. मदन मोहन रतन के आचरण ने उन्हें निर्णय पारित करने के लिए प्रेरित किया, प्रदर्शन पीएस सभी समान, अपराध की तारीख पर, यह नहीं कहा जा सकता था कि प्रतिवादी अपने प्राकृतिक का वैध संरक्षक नहीं था बेटी, हालाँकि उसकी अभिरक्षा तथ्यात्मक और कानूनी रूप से नाबालिग के मामा को सौंपी गई थी। भारतीय दंड संहिता की धारा 361 की व्याख्या में एक ही समय में एक नाबालिग के एक से अधिक वैध अभिभावकों की परिकल्पना की गई है । प्रतिवादी ऐसे ही एक व्यक्ति थे और डॉ. मदन मोहन रतन भी। इस प्रकार निचली अदालतों को प्रतिवादी को कम से कम संदेह का लाभ देते हुए आरोप से बरी कर देना चाहिए था। ऐसा करने में विफल रहने पर, प्रतिवादी को इस न्यायालय द्वारा आरोप से बरी करने का आदेश दिया जाता है।

4. निर्णय पर बोझ डाले बिना, यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि 9-6-1984 को डॉ. मदन मोहन रतन की मृत्यु पर, नाबालिग की हिरासत और उसकी संरक्षकता का प्रश्न मेरे द्वारा तय किया गया था। 1984 की आपराधिक रिट संख्या 264 में पैरेंस पैट्रिया क्षेत्राधिकार उधम देवी बनाम तृप्ता देवी का फैसला 10-8-1984 को हुआ। मैंने श्रीमती को नियुक्त किया था। कमलेश, नाबालिग की प्राकृतिक मां, उसकी कानूनी अभिभावक होंगी और वर्तमान वास्तविक अभिभावक श्रीमती एस. रॉय, प्रिंसिपल, एमसीएमडीएवी कॉलेज फॉर विमेन, चंडीगढ़ होंगी। प्रतिवादी को नाबालिग का संरक्षक नियुक्त नहीं माना गया था अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 12 के शांत करने वाले कारक के बावजूद वर्तमान दोषसिद्धि और लगे कलंक के कारण। प्रतिवादी के बरी होने से उसके और उसकी नाबालिग बेटी, जो उसकी एकमात्र संतान है, के बीच शांति की सांस आने की संभावना है।

5. अंत में, यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश निर्णय के समापन और हस्ताक्षर करने के बाद उसमें कोई नोट नहीं जोड़ सके। वह कोर्स कानून के तहत

उसके लिए स्वीकार्य नहीं था। वह यह आदेश नहीं दे सकता कि प्रतिवादी को दोषी ठहराए जाने से उसकी सेवा प्रभावित न हो। यह अपीलीय आपराधिक न्यायालय के रूप में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के अधिकार क्षेत्र से बाहर था। इसके अलावा, अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के तहत प्रतिवादी को रिहा करते समय , वह जुर्माने की सजा को बरकरार नहीं रख सकता था। उस घटना में जुर्माना प्रतिवादी को चुकाया जाना था। चूँकि अब वह बरी हो रहा है, इसलिए यदि उसने जुर्माना अदा कर दिया है, तो उसे माफ कर दिया जाएगा।

6. ऊपर जो कहा गया है, उसके लिए अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश का आदेश उलट दिया जाता है और आरोपी प्रतिवादी को आरोप से बरी कर दिया जाता है।

अस्वीकरण: स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

आशीष कुमार मंडल
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
फिरोज़पुर झिरका, नूंह